**Indian J.Soc & Pol. 03(03):2016:125-128** **ISSN 2348-0084 (PRINT)**
**(Special Print Issue: September, 2016)** **ISSN 2455-2127(ONLINE)**

# प्रेमचन्द साहित्य में राष्ट्रीयता का स्वरूप

**परेश कुमार पाण्डेय**[1]
[1]एसोसियेट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, का.सु.साकेत पी.जी. कॉलेज, अयोध्या,फैजाबाद, उ0प्र0,भारत

**ABSTRACT**

*नेहरू ने देश को एक संतुलित और आदर्श राष्ट्रवाद के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी थी, उनकी मान्यता थी कि मातृभूमि के प्रति भावुकता से भरे सम्बन्ध को 'राष्ट्रीयता' कहते हैं। राष्ट्रवाद को नेहरू जी ने भी एक भावात्मक अनुभूति माना था, जिसे देशवासी अपने देश के प्रति स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं और जिसके कारण वे परस्पर एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। विदेशी शासन के दौरान राष्ट्रीयता की भावना अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है तथा राष्ट्रीय आन्दोलन को गतिशील बनाये रखने के लिए शक्तिशाली प्रेरणा का कार्य करती है। इसके माध्यम से लोगों को काम में लगाया या कुरबानियों के लिए उकसाया जाता है। साहित्य इस उकसावे में एक कारक का कार्य करता है। पराधीन भारत में राष्ट्रीयता के जागरण में प्रेमचन्द साहित्य का क्या योगदान रहा इसी को रेखांकित करना ही प्रस्तुत शोध पत्र का अभीष्ट है।*

***KEY WORDS:** प्रेमचन्द, राष्ट्रवाद, हिन्दी साहित्य,*

राष्ट्रीयता के भावोन्नयन में धर्म की विशेष भूमिका होती है। उसका स्वरूप समन्वयात्मक होता है। समन्वय की पीठिका में ही राष्ट्रीय भाव जन्म लेते हैं। राष्ट्रीय भाव व्यक्ति के भौगोलिक, आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक पर्यावरण से ही नवीन रूप ग्रहण करते हैं, जिनकी उद्भावना एक देश से दूसरे देश में तथा एक काल से दूसरे काल में भिन्न होती है, परन्तु धर्म उसे एक सूत्र में पिरोने का कार्य करता है। जी.टी. गैरेट के शब्दों में– ''धर्म से मेरा आशय रूढ़ अर्थ में नहीं है। राष्ट्रवाद का विकास शिक्षित वर्ग में धार्मिक पुनरुत्थान से हुआ। धर्म–निरपेक्ष शिक्षा ने ही उसे प्रगति के पथ पर अग्रसर किया।''(गैरेट,1928 पृ0125) कतिपय विद्वानों ने इसे मानव–मन की प्रथम और अन्तिम मानसिक दशा कहा है। स्वर्गीय चितरंजन दास के अनुसार– ''राष्ट्रवाद स्वानुभूति में स्वविकास तथा स्वसंतोष की एकमात्र प्रक्रिया है।''(राय,1927,पृ0256) इसी की पुष्टि पंडित जवाहरलाल नेहरू के शब्दों से भी होती है। उन्होंने देश को एक संतुलित, समयशील और आदर्श राष्ट्रवाद के मार्ग पर चलने की प्रेरणा दी। उनकी मान्यता थी कि मातृभूमि के प्रति भावुकता से भरे सम्बन्ध को 'राष्ट्रीयता' कहते हैं। राष्ट्रवाद को नेहरू जी ने भी एक भावात्मक अनुभूति माना था, जिसे देशवासी अपने देश के प्रति स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं और जिसके कारण वे परस्पर एक दूसरे से जुड़े रहते हैं। विदेशी शासन के दौरान राष्ट्रीयता की भावना अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है तथा राष्ट्रीय आन्दोलन को गतिशील बनाये रखने के लिए शक्तिशाली प्रेरणा का कार्य करती है। इसके माध्यम से लोगों को काम में लगाया या कुरबानियों के लिए उकसाया जाता है क्योंकि ''राष्ट्रीयता का आदर्श एक गहरा और मजबूत आदर्श है।''(नेहरू,2008पृ067)

राष्ट्रीयता की अवधारणा के सम्बन्ध में प्रेमचन्द का स्पष्ट मत था कि ''जागा हुआ राष्ट्र कभी अपने गुलामी की दशा में रखना बर्दाश्त नहीं कर सकता।''(राय,पृ0420) और जब कोई राष्ट्र जागेगा तो राष्ट्रीयता का मतलब भी समझेगा। प्रेमचन्द राष्ट्रीयता के प्रगतिशील पहलू को ही महत्त्व देते थे। उनके लिए राष्ट्रीयता का महत्त्वपूर्ण अर्थ था– जागृति। 'रंगभूमि' उपन्यास में वे डॉ. गांगुली के माध्यम से कहते हैं– ''आज मेरे दिल से यह विश्वास उठ गया, जो चालीस वर्षों से जमा हुआ था कि गवर्नमेंट हमारे ऊपर न्याय–बल से शासन करना चाहती है। आज उस न्याय–बल की कलई खुल गयी, हमारी आँखों से पर्दा उठ गया और हम गवर्नमेण्ट को उसके नग्न, आवरणहीन रूप में देख रहे हैं। अब हमें स्पष्ट दिखाई दे रहा है कि केवल हमको पीसकर तेल निकालने के लिए, हमारा अस्तित्व मिटाने के लिए, हमारी सभ्यता और हमारे मनुष्यत्व की हत्या करने के लिए, हमको अनंत काल तक चक्की का बैल बनाये रखने के लिए हमारे ऊपर राज्य किया जा रहा है।''(प्रेमचन्द,2005 पृ0447) यह कहना आवश्यक नहीं कि इन मनुष्य विरोधी कार्यों के विरुद्ध जागृत राष्ट्रीयता ही प्रेमचन्द की अभीष्ट राष्ट्रीयता है। उन्होंने 4 दिसम्बर 1933 को लिखा था– ''कोई जाति सदैव आश्रित बनकर नहीं रह सकती। शिक्षा के साथ उसका स्वाभिमान भी जागृत होगा और वह राष्ट्रीयता का महत्त्व समझेगी।''(अमृतराय,पृ0422) प्रेमचन्द का यह कथन स्पष्ट करता है कि उनकी राष्ट्रीयता सिर्फ उपनिवेशवाद के विरोध तक

*1.Corresponding Author*

सीमित न थी। उनकी राष्ट्रीयता का आधार भारतीय समाज की एकता में था। वे अंग्रेजों की 'फूट डालो राज करो' नीति को पहचानते थे और जानते थे कि ब्रिटिश सरकार अपनी नीति से भारत में राष्ट्रीयता की भावना को कमजोर करना चाहती है। अंग्रेजों की इस नीति को उन्होंने अपनी कहानी का विषय बनाया और प्रभावशाली ढंग से सामान्य जनता में इस रहस्य को खोल दिया। इस विषय पर लिखी उनकी कहानी 'अधिकार की चिन्ता' है; जिसका नायक एक कुत्ता 'टामी' है। प्रेमचन्द इसी टामी (कुत्ते) को ब्रिटिश हुकूमत का प्रतीक बनाकर अपनी बात कहते हैं– ''टामी ने एक नई चाल चली वह कभी किसी पशु से कहता, तुम्हारा फलां शत्रु तुम्हें मार डालने की तैयारी कर रहा है, किसी से कहता कि फलां तुमको गाली देता था। जंगल के जन्तु उसके चकमे में आकार आपस में लड़ जाते हैं, टामी की चाँदी हो जाती है।''(मानसरोवर,भाग6 पृ0 194) टामी की चाँदी न होने पाये, इसलिए अन्य जानवरों में एकता और समझ जागृत होनी चाहिए, प्रेमचन्द ऐसा मन्तव्य देकर भारतीयों को सचेत करते हैं। राष्ट्रीयता की इसी भावना का स्पष्टीकरण करते हुए पं. जवाहर लाल नेहरू लिखते हैं– ''राष्ट्रीयता की भावना लोगों में एक जोरदार भावना है और इसके साथ परम्परा, मिल–जुलकर रहने और सामान्य मकसद की भावनाएँ जुड़ी हुई हैं।''(नेहरू, 2008 पृ067)

राष्ट्रवाद को नेहरू ने एक भावनामक अनुभूति माना था, जिसे देशवासी अपने देश के प्रति स्वेच्छा से स्वीकार करते हैं। जिसके कारण वे परस्पर जुड़े रहते हैं। विदेशी शासन के समय राष्ट्रीयता की भावना अधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है; तथा राष्ट्रीय आन्दोलन को गतिशील बनाये रखने के लिए शक्तिशाली प्रेरणा का कार्य करती है। जब किसी देश पर संकट उपस्थित होता है तो राष्ट्रवाद अपना प्रभुत्व स्थापित कर लेती है।

प्रेमचन्द के समय का राष्ट्रवाद मुख्यतः जमींदार, पूँजीपति, गठबन्धन की आकांक्षाओं की तरफ झुकता जा रहा था, श्रमजीवियों की जगह ऐसे राष्ट्र में हाशिये पर थी। किसानों से लगान जबरदस्ती वसूल किया जाता था। प्रेमचन्द लिखते हैं– ''किसानों के पास रूपये हैं नहीं, दें तो कहाँ से दें। गरीब किसान लगान कहाँ से दें। उस पर सरकार का हुक्म है कि लगान कड़ाई के साथ वसूल किया जाय। किसान इस पर भी राजी न हैं कि हमारी जमा जथा नीलाम कर लो, घर कुर्क कर लो अपनी जमीन ले लो।''(मानसरोवर भाग 7 पृ0 10) ऐसी ही सरकार के राज में जमींदार भी ऐसे ही हैं जिन्हें सिर्फ अपनी स्वार्थ सिद्धि से मतलब है। ये ''जमींदार गरीबों का खून चूसने के सिवा और क्या करते हैं।''(मानसरोवर भाग 1 पृ0 116) सिर्फ इतना ही नहीं प्रेमचन्द आगे लिखते हैं– ''गरीबों का दर्द कौन समझता है। हम तो मर भी जाते हैं, तो कोई दुआर झांकने नहीं आता, कंधा देना तो बड़ी बात है।''(वही, पृ0135)यह गरीब की बिडम्बना है कि उसके अन्तिम समय में भी कोई साथ नहीं है तो सरकार अन्य परिस्थितियों में क्या करेगी?

प्रेमचन्द ने अपनी रचनाओं में ग्रामीण जीवन को केन्द्र में रखा है। उनके कथानकों के पात्र मात्र व्यक्ति न होकर सम्पूर्ण भारतीय राष्ट्रीय जीवन के पात्र बन जाते हैं। प्रेमचन्द का कथा साहित्य ग्रामीण जीवन का आधार लिए हुए राष्ट्रीय जीवन का साहित्य है। 'प्रेम पीयूष' की भूमिका में वे लिखते हैं– ''जिस देश के अस्सी फीसदी मनुष्य गाँवों में बसते हों, उसके साहित्य में ग्राम–जीवन का ही मुख्य रूप से चित्रित होना स्वाभाविक है। उनका सुख राष्ट्र का सुख, उनका दुःख राष्ट्र का दुःख और उनकी समस्याएँ राष्ट्र की समस्याएँ हैं।'' प्रेमचन्द की राष्ट्रीयता को इसी परिप्रेक्ष्य में देखा और समझा जा सकता है।

प्रेमचन्द ने भारतीय राष्ट्र को अपनी जंजीरों के सामने बनते हुए देखा था। वह राष्ट्रीय चेतना से लबरेज था। वे सोचते थे– ''राष्ट्रीयता में वह जादू है, और आने वाला समय इतना प्रतिभाशील हो रहा है कि आने वाले चन्द बरसों में वे बातें भी सम्भव हो सकती हैं, जो आज असम्भव समझी जा रही हैं।''(प्रेमचन्द, 2002 पृ090) उनकी राष्ट्रीयता समावेशी थी। यही वजह है कि वे एक ऐसे राष्ट्र का स्वप्न देखते थे, जिसमें वर्णव्यवस्था, धार्मिक भेदभाव और विषमता न हो। उन्हें लगता था कि सच्ची राष्ट्रीयता में एक जादू है जिससे यह सब सम्भव हो सकता है। राष्ट्रीयता के अर्थ को इतने अधिक आयाम देना सही है या नहीं, यह एक अलग प्रश्न है। इतना स्पष्ट है कि प्रेमचन्द न अन्तर्राष्ट्रीयतावाद को छोटे अर्थ में लेते थे न राष्ट्रवाद को। राजनीतिक ही नहीं सामाजिक और आर्थिक स्तर पर भी वे किसी प्रकार की अमानवीय व्यवस्था के विरुद्ध थे। इसीलिए उनका कहना था– ''राष्ट्र चेतना अब बहुत दिनों तक यह अमानवीय अन्याय नहीं सह सकती।''(अमृतराय, पृ0425) वे राष्ट्र में सभी तरह के भेदभाव, विषमता और अन्याय का अन्त चाहते थे, क्योंकि इसके बिना राष्ट्रवाद अर्थहीन था। वे देख रहे थे कि स्वाधीनता संग्राम में एक वर्ग ऐसा भी शामिल है जिसे सुराज हो न हो, स्वराज्य चाहिए।

'कर्मभूमि' प्रेमचन्द का स्वाधीनता संघर्ष पर केन्द्रित उपन्यास है। इसमें राष्ट्रीयता से सम्बन्धित प्रेमचन्द के स्पष्ट विचार व्यक्त हुए हैं। इस उपन्यास में एक प्रसंग है– मुन्नी का बलात्कार। तीन गोरे सिपाही उसके साथ बलात्कार करते हैं। उपन्यास का महत्त्वपूर्ण पात्र अमरकान्त इस घटना पर विचार

करता है– ''इन टके से सैनिकों की इतनी हिम्मत क्यों हुइ, यह गोरे सिपाही इंग्लैण्ड की निम्नतम श्रेणी के मनुष्य होते हैं। इनका साहस कैसे हुआ? इसलिए की भारत पराधीन है। यह लोग जानते हैं कि यहाँ के लोगों पर उनका आतंक छाया हुआ है। वह जो चाहे अनर्थ करें कोई चूँ नहीं कर सकता। यह आतंक दूर करना होगा। इस पराधीनता की बेड़ी को तोड़ना होगा।''(कर्मभूमि, पृ041) मुन्नी ने बलात्कार और सलीम के विचार के माध्यम से प्रेमचन्द दो बड़े लक्ष्य साधते हैं। पहला यह कि अंग्रेज सभ्यता की खोल में एक बर्बर जाति है और दूसरा कि इनका एकमात्र जवाब राष्ट्रीयता है, जो उन्हें उखाड़ फेंकेगी। गौर करने की बात है कि प्रेमचन्द राष्ट्रीयता का प्रयोग मनुष्य के विकास के लिए करते हैं विनाश के लिए नहीं।

प्रेमचन्द स्वाधीनता आन्दोलन के युग के जागरूक उपन्यासकार हैं। उन्होंने अपने लेखन में स्वाधीनता प्राप्ति को केन्द्रियता प्रदान की। वे यह स्वाधीनता भारतीय शोषित वर्ग के लिए चाहते थे और इसीलिए इसका अर्थ उपनिवेशवाद के साथ–साथ सामन्तवाद से मुक्ति में ढूँढ़ते थे। जाहिर है ऐसी मुक्ति घर बैठे नहीं मिलती। प्रेमचन्द इस मुक्ति के लिए राष्ट्रीयता व राष्ट्रवाद का इस्तेमाल करते हैं। स्वदेशी आन्दोलन में उनका भाव इसी मुक्ति से जुड़ा है। जब वे कहते हैं कि ''अपना देश जब माल बनाता है तो फिर बाहरी माल क्यों खरीदा जाए?' तब उपनिवेशवाद के विरुद्ध अपनी राष्ट्रीयता की धारणा व्यक्त करते हैं, और जब जमींदारों के शोषण के खिलाफ लिखते हैं तब सामन्तवाद के विरुद्ध राष्ट्रीयता की अपनी अवधारणा व्यक्त करते हैं। इसके अतितरिक्त जब वह मिल–मालिकों की स्वार्थपरता का जिक्र करते हैं और कहते हैं कि वे देश के प्रति त्याग भाव को छोड़ रहे हैं, तब भारत में पूँजीवाद के विरुद्ध राष्ट्रीयता की अवधारणा व्यक्त करते हैं।

'सेवासदन' उपन्यास में प्रेमचन्द लिखते हैं– ''अगर समाज को विश्वास हो जाय कि आप उसके सच्चे सेवक हैं, आप उसका उद्धार करना चाहते हैं, आप निःस्वार्थ हैं तो वह आपके पीछे चलने को तैयार हो जाता है। लेकिन यह विश्वास सच्चे सेवाभाव के बिना कभी प्राप्त नहीं होता। जब तक अन्तःकरण दिव्य और उज्ज्वल न हो, वह प्रकाश का प्रतिबिम्ब दूसरे पर नहीं डाल सकता। हममें से कितने ही ऐसे सज्जन हैं, जिनके मस्तिष्क में राष्ट्र की कोई सेवा करने का विचार उत्पन्न होता है, लेकिन बहुधा वह विचार ख्याति लाभ की आकांक्षा से प्रेरित होता है।''[15] इस प्रकार प्रेमचन्द शोषितों की भूमिका के लिए राष्ट्रीयता को हथियार बनाते हैं, लेकिन इस जानकारी के साथा कि हथियार होशियारी से प्रयोग में न लाए जायं तो घातक ही सिद्ध होते हैं।

प्रेमचन्द यदि एक ओर यह स्वीकार करते हैं कि ''वर्तमान सभ्यता का सबसे अच्छा पहलू राष्ट्रीयता की भावना का जन्म लेना है। उसे इस पर गर्व है और उचित गर्व है''(अमृतराय, पृ0 425) तो दूसरी ओर वे औद्योगीकरण (पूँजीवादी), जो कि अनिवार्यतः राष्ट्रीयता की भावना के उदय के साथ कारा रूप में जुड़ा हुआ है, के विषय में यह कहना चाहते हैं कि– ''क्या यह व्यापार और कल–कारखानों की उन्नति, तरह–तरह के यन्त्रों के आविष्कार, जिस पर नये युग का इतना गर्व है, विशुद्ध सौभाग्य है, जबकि सिगरेट कौड़ियों के मोल बिकता है, बटन और टिन के खिलौने मारे–मारे फिरते हैं, मगर दूध और घी, मकई और ज्वार का स्थायी अकाल पड़ा हुआ है, जबकि प्रकृति की दी हुई सम्पदा को लात मारकर लोग बनावटी नुमाइशी ढकोसलों पर जान दे रहे हैं, जबकि आजाद मेहनत की रोटी खाने वाल इंसान पूँजीपतियों के गुलाम होते जाते हैं, महज पैसे वाले व्यापारियों के नफे के लिए खूनी लड़ाइयों में कूदने से भी लोग बाज नहीं आते, जबकि विद्या और कला और आध्यात्मिकता भी नफे नुकसान के भँवर में फँसी हुई है, जबकि कुशल राजनीतियों के पाखण्ड और छलकपट हंगामा बरपा किये हुए हैं और न्याय और सच्चाई का शोर सिर्फ जुल्म के मारे हुओं की कमजोर पुकार को दबाने के लिए मचाया जाता है।''(वही,पृ0261–262) इस स्वार्थपरता को समझते हुए वे आगे लिखते हैं– ''जब कुछ थोड़े से पूँजीपतियों की स्वार्थपरता दुनिया को उलट–पुलट कर रख दे सकती है तो एक पूरे राष्ट्र की सम्मिलित स्वार्थपरता क्या कुछ न कर दिखाएगी।''(वही पृ0266–267) वे नये जमाने में सामन्ती शोषण की जकड़न टूटने और राष्ट्रवाद के उदय का स्वागत भी करना चाहते हैं, किन्तु वे व्यापारियों और बनियों के जमाने को स्वीकार भी नहीं कर सकते।

वे दुनिया के नक्शे पर पैदा होती और उभरती हुई सर्वहारा वर्ग की ताकत को देखते हैं और उसे अपने क्षेत्र में, मजदूर किसानों के लिए समानता के आदर्श के लिए संघर्ष का स्वागत करना चाहते हैं, किन्तु किसी शंकालु किसान की तरह जिसे शताब्दियों से ठगा गया हो, इस पर भी उनका विश्वास नहीं जमता और इसे पूरे राष्ट्र की सम्मिलित स्वार्थपरता के रूप में देखते हैं। इस वातावरण में वह नयी चीज 'लीग ऑफ नेशंस' (जो राष्ट्रपरता से ऊपर है) की ओर आशा लगाते हैं, किन्तु यह आशा भी आशंका से मुक्त नहीं है। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी लिखते हैं– ''राष्ट्रीयता के मोहन मंत्र से सारे देश को 'एक' करने के प्रयत्न में थोड़े से धनकुबेरों का स्वार्थ ही प्रबल हेतु था और उपनिवेशों के लोगों को सभ्य शासनक्षम बनाने की प्रतिज्ञाएँ भौंड़े मजाक से अधिक वजनदार नहीं थी।''(द्विवेदी,2015 पृ0237)

प्रेमचन्द के लेखन पर गहराई से विचार करने पर पता चलता है कि राष्ट्र की मुक्ति उनका एकमात्र संकल्प और साध्य रहा है। उनका समूचा लेखन कर्म भारतीय जनता के स्वाधीनता आन्दोलन को समर्पित रहा है। स्वाधीनता उनके लिए सदैव किसी देश या जाति की मुकम्मल अस्मिता का पर्याय रहा है और उनकी सारी लड़ाई भारतीय जनता की इसी मुकम्मल अस्मिता के लिए छेड़ी गयी लड़ाई रही है।

डॉ. रामविलास शर्मा लिखते हैं– ''जब साहित्य हृदय की वस्तु हो जाती है तो उसका ध्येय भी आनन्द करना रह जाता है। साहित्य से रस की सृष्टि, उसका ध्येय आनन्द मात्र होना, प्रेमचन्द की 'भारतीयता का प्रमाण' है।''(शर्मा,2007 पृ044) ये शब्द प्रेमचन्द के सम्पूर्ण भारतीय होने का प्रमाण देते हैं। प्रेमचन्द का जन्म पराधीन भारत में हुआ, पराधीनता में ही उनकी जिन्दगी गुजरी और परतन्त्रता की काली चादर तले वे चिरनिद्रा में सो गये।

इन स्थितियों का प्रभाव किसी भी व्यक्ति, खासकर एक साहित्यकार पर पड़ना आवश्यक था। परतन्त्रता का दर्द, देश के हालात का दर्द, गरीबी का दर्द, बेसहारा जीने का दर्द तथा विपत्तियाँ सहने का दर्द। कुल मिलाकर दर्द और व्यथा का पर्याय था उनका जीवन। उनकी साहित्य सृष्टि इस दर्द से निकलने और परिवर्तन की अदम्य आकांक्षा का अस्त्र थी। भारत की स्वाधीनता उनके जीवनकाल की सबसे बड़ी इच्छा थी और अमानवीय उत्पीड़न से मुक्ति का उनका स्वप्न। पं. बनारसी दास चतुर्वेदी को लिखे पत्र में प्रेमचन्द ने लिखा है– ''मेरी अभिलाषाएँ बहुत सीमित हैं। इस समय सबसे बड़ी अभिलाषा यही है कि हम स्वराज संग्राम में विजयी हों। धन या यश की लालसा मुझे नहीं रही। खाने भर को मिल जाता है। मोटर और बंगले की मुझे हविश नहीं। हाँ यह जरूर चाहता हूँ कि दो चार उच्चकोटि की पुस्तकें लिखूँ, पर उनका उद्देश्य भी स्वराज विजय ही है।'' प्रेमचन्द ने समय–सत्य और रचना–सत्य को एक साथ रखकर लेखन किया है इसलिए वे राष्ट्रीय जीवन के परिप्रेक्ष्य में आज भी प्रासंगिक और सार्थक हैं।

## सन्दर्भ


शर्मा, रामविलास (2007) : *प्रेमचन्द*, नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन,

द्विवेदी, हजारी प्रसाद : *हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास,* नई दिल्ली, राजकमल प्रकाशन

प्रेमचन्द : *कर्मभूमि*

प्रेमचन्द : *मानसरोवर भाग–एक*

प्रेमचन्द : *मानसरोवर भाग–सात*

प्रेमचन्द : *मानसरोवर भाग–छः*

प्रेमचन्द (2002) : *प्रेमाश्रम,* मनोज पब्लिकेशन्स

प्रेमचन्द (2005) *रंगभूमि* नई दिल्ली, नेशनल बुक ट्रस्ट

प्रेमचन्द : *सेवासदन*

राय पी सी (1927): *लाइफ एण्ड टाईम ऑफ सी.आर. दास,* लंदन, ऑक्सफोर्ड युनि. प्रेस,

नेहरू, जवाहर लाल(2008) :*हिन्दुस्तान की कहानी* नई दिल्ली, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन

अमृतराय(1962),: *विविध प्रसंग–दो* इलाहाबाद, हंस प्रकाशन,

गैरेट, जी0टी0(1928) :*एन इण्डियन कामेन्ट्री* लन्दन 1928